

## क्षमावाणी

क्षमावाणी के सन्दर्भ में एक बात विचारणीय यह है कि आज हमने इसे मनुष्यों तक ही सीमित कर रखा है, जबकि आचार्यों ने इसे जीवमात्र तक विस्तार दिया है। वे यह नहीं लिखते कि **ह्व खामेमि सव्व जैनी, सव्वे जैनी खमन्तु मे** अथवा **सव्वे मनुजा खमन्तु मे** बल्कि यह लिखते हैं कि **‘खामेमि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमन्तु मे’** वे सब जैनियों या सर्व मनुष्यों मात्र से क्षमा माँगने या क्षमा करने की बात न करके सब जीवों को क्षमा करने और सब जीवों से क्षमा माँगने की बात करते हैं। इसीप्रकार वे मात्र जैनियों या मनुष्यों से मित्रता नहीं चाहते, किन्तु प्राणिमात्र से मित्रता की कामना करते हैं। उनका दृष्टिकोण संकुचित नहीं, विशाल है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि जब कोई जीव हमसे क्षमा माँगे ही नहीं, तो हम उसे कैसे क्षमा करें ? तथा हम उससे क्या क्षमा माँगे, जो हमारी बात समझ ही नहीं सकता। जो हमारी बात समझ ही नहीं सकता, वह हमें क्या क्षमा करेगा, कैसे क्षमा करेगा ? इसलिए एकेन्द्रियादि से क्षमा माँगना और उन्हें क्षमा करना कैसे संभव है ?

क्षमायाचना और क्षमाकरना दो प्राणियों की सम्मिलित क्रिया नहीं है। यह एकदम व्यक्तिगत चीज है, स्वाधीन क्रिया है। क्षमावाणी एक धार्मिक परिणति है, आध्यात्मिक क्रिया है। उसमें पर के सहयोग एवं स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती। यदि हम क्षमाभाव धारण करना चाहते हैं तो उसके लिये यह आवश्यक नहीं कि जब कोई हमसे क्षमायाचना करे, तब ही हम क्षमा कर सकें अर्थात् क्षमा धारण कर सकें। अपराधी द्वारा क्षमायाचना नहीं किये जाने पर भी उसे क्षमा किया जा सकता है; क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता तो क्षमा धारण करना भी पराधीन हो जाता।

कोई जीव हमसे क्षमा माँगे, चाहे नहीं; हमें क्षमा करे, चाहे नहीं; हम तो अपनी ओर से सबको क्षमा करते हैं और सबसे क्षमा माँगते हैं ह्व इसप्रकार हम तो अब किसी के शत्रु नहीं रहे और न हमारी दृष्टि में कोई हमारा शत्रु रहा। जगत हमें शत्रु मानो तो मानो, जानो तो जानो; हमें इससे क्या ? और हमारा दूसरे की मान्यता पर अधिकार भी क्या है ? हम तो अपनी मान्यता सुधारकर अपने में जाते हैं, जगत की जगत जानें ह्व ऐसी वीतराग परिणति का नाम ही सच्चे अर्थों में क्षमावाणी है।

ह्व धर्म के दशलक्षणः पृष्ठ : 180-181

## वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।  
वीतराग-विज्ञान का, घर-घर होय प्रसार ॥

वर्ष : 22

255

अंक : 3

प्रवचनसार पद्यानुवाद

ज्ञानतत्त्वप्रज्ञापन महाधिकार

शुभपरिणामाधिकार

पुण्य-पाप में अन्तर नहीं है ह्व जो न माने बात ये।  
संसार-सागर में भ्रमं मद-मोह से आच्छन्न वे ॥77॥  
विदितार्थजन परद्रव्य में जो राग-द्वेष नहीं करें।  
शुद्धोपयोगी जीव वे तनजनित दुःख को क्षय करें ॥78॥  
सब छोड़ पापारंभ शुभचारित्र में उद्यत रहें।  
पर नहीं छोड़े मोह तो शुद्धात्मा को ना लहें ॥79॥  
द्रव्य गुण पर्याय से जो जानते अरहंत को।  
वे जानते निज आत्मा दृग्मोह उनका नाश हो ॥80॥  
जो जीव व्यपगत मोह हो ह्व निज आत्म उपलब्धि करें।  
वे छोड़ दें यदि राग रुष शुद्धात्म उपलब्धि करें ॥81॥  
सर्व ही अरहंत ने विधि नष्ट कीने जिस विधी।  
सबको बताई वही विधि हो नमन उनको सब विधी ॥82॥  
द्रव्यादि में जो मूढ़ता वह मोह उसके जोर से।  
कर राग-रुष परद्रव्य में जिय क्षुब्ध हो चहुंओर से ॥83॥  
बंध होता विविध मोहरु क्षोभ परिणत जीव के।  
बस इसलिए सम्पूर्णतः वे नाश करने योग्य हैं ॥84॥

ह्व डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

## ज्ञानी पर का कर्ता नहीं होता

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 25 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है

**कटस्य कर्ताहमिति सम्बन्धः स्याद्वयोर्द्वयोः ।**

**ध्यानं ध्येय यदात्मैव सम्बन्धः कीदृशस्तदा ॥25॥**

मैं चटाई का कर्ता हूँ, वह इसप्रकार अलग-अलग दो पदार्थों के बीच सम्बन्ध हो सकता है। जबकि आत्मा ही ध्यान और ध्येयरूप हो जाए तब सम्बन्ध कैसा ?

( गतांक से आगे .....)

जब आत्मा का परमात्मा के साथ एकीकरण होता है; तब आत्मा चिन्मात्र भासित होता है, ऐसे अखंड-पवित्र आत्मा में दृष्टि-ज्ञान-स्थिरतारूप से एकाकार होने का नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य है।

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि वह जब जीव की पर्याय स्वभाव में एकाकार हुई तब आत्मा (जीव) का कर्म के साथ कोई संबंध ही नहीं रहा तो फिर उसे कर्म से छूट गया वह ऐसा क्यों कहते हैं ?

यहाँ पूज्यपादस्वामी वीतरागता की वकालत कर रहे हैं। उन्होंने यहाँ गागर में सागर भर दिया है वह थोड़े में बहुत भाव भरा है।

जब अज्ञानी जीव शुभाशुभभावों को अपने माननेरूप मिथ्या अभिप्राय करता है, तब उसे दर्शनमोहनीयकर्म का उदय निमित्त होता है; लेकिन जब ज्ञानी जीव स्वभाव में एकाकार होता है, तब उसे कर्म का निमित्त ही नहीं है। दर्शनमोहनीय कर्म के नाश का निमित्त कहना तो व्यवहार है। इसी रीति से स्वानुभूति की बात करें तो जिसे अपनी पर्याय में स्वभाव का स्व-संवेदन ही नहीं है, उसे स्वानुभूति के आवरणरूप कर्मों का निमित्त है; किन्तु जिसे स्वभाव के एकीकरण से पर्याय में स्वानुभूति प्रगट हुई है वह उसे तो कर्मों का निमित्त भी नहीं है।

अतीन्द्रिय आनन्दरूप शान्ति की प्राप्ति का नाम चारित्र है। चारित्र के काल में आत्मा का परमात्मा के साथ एकीकरण हुआ है अर्थात् आत्मा चिन्मात्र हुआ है, राग-द्वेष से रहित हुआ है। इस समय चारित्रमोहनीयकर्म का उदय ही नहीं है तो उसे निमित्त कैसे कहा जायेगा ?

अनन्त जन्म-मरण का नाश करनेवाली एक समय की दशा को धर्म कहते हैं। धर्म का क्या स्वरूप है और उसे प्रगट करने का क्या उपाय है ? उसे बतानेवाला यह इष्ट-उपदेश है। अपनी पर्याय में स्वानुभूति का अभाव हो तो चारित्रमोहनीय कर्म के उदय को निमित्त कहने में आता है; किन्तु यदि कोई यह कहे कि 'चारित्र मोहनीय का उदय होने से स्वानुभूति की दशा प्रगट नहीं हुई' तब तो यह अनिष्ट उपदेश है, इष्ट-उपदेश नहीं। स्वभाव में एकाकार होते ही निमित्तों का संबंध उड़ जाता है।

कर्म का उदय आत्मा को किसी भी प्रकार से हानि-लाभ कराता है तब ऐसी मान्यता अज्ञानता है, मूढता है। तथा राग की मंदता से भी किसीप्रकार का लाभ मानना अज्ञानता ही है। राग की मंदता तो निमित्तमात्र है। अपने स्वभाव में एकाकार होने से लाभ प्राप्त होता है; वहाँ कर्म के उदय अथवा राग की मंदता की ओर लक्ष ही नहीं है तो वह लाभ-हानि का कारण कैसे हो सकता है ? वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा न माने और वैसा परिणामन भी न करें तो श्रद्धा व आचरण मिथ्या है।

इसी गाथा में कहा है कि **ध्यानम् ध्येयम् यत् आत्मैव** अर्थात् ध्यान, ध्येय और ध्याता इन तीनों रूप एक आत्मा ही है। आप ही ध्येय, आप ही ध्याता और आप ही ध्यान तब इन तीनोंरूपों में एक आत्मा ही व्याप्त है। ऐसी दशा में राग अथवा कर्म की ओर ध्यान ही नहीं रहता।

अहाहा ! वीतरागता का मार्ग ही अलौकिक है। भाई ! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग है। महाविदेह क्षेत्र में साक्षात् भगवान विराजमान हैं, साथ ही केवली भगवान, गणधर, मुनिराजादि भी विराजते हैं। उनके मुख से निकली हुई यह कल्याणमयी वाणी है। तीनोंकाल में तीर्थकरों की वाणी एक जैसी ही रहती है। वस्तु का जैसा स्वरूप है, वैसा ही भगवान बताते हैं, उनकी वाणी में एकरूपता रहती है। श्रीमद् राजचन्द्र कहते थे **एक होय त्रणकालमां परमारथनो पंथ** परमार्थ का पंथ तीनोंकाल में एक ही होता है, दो-चार अथवा अन्यरूप नहीं।

18● अक्टूबर, 2004

यहाँ कहते हैं कि हे भाई ! तेरे किसी भी गुण की निर्मलपर्याय स्वभाव के साथ एकीकरण करने से प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र भी स्वभाव के एकीकरण से ही प्रगट होते हैं तथा चारित्र निजस्वभाव के पुरुषार्थ से प्रकट होता है, निजवीर्य से प्रकट होता है।

कोई कहे कि वीर्य किसे कहते हैं ? उससे कहते हैं कि जो स्वभाव की रचना करे उसे ही वीर्य कहते हैं। जो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा की रचना करे उसका नाम वीर्यगुण है। भगवान सर्वज्ञदेव ने जैसा कहा है, वैसा ही आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है और उसीप्रकार आचार्य अमृतचन्द्र भी कहते हैं कि हे जीवों ! जो आत्मवीर्य अपने शुद्ध सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और वीतरागी चारित्र आदि शुद्ध-आनन्द पर्याय की रचना करे तब उसका नाम सर्वज्ञदेव वीर्य कहते हैं।

आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार की टीका में 47 शक्तियों द्वारा आत्मगुणों की व्याख्या की है। वहाँ संस्कृत टीका में ही लिखा है कि **स्वरूप निर्वर्तन सामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः** वीर्य अर्थात् पुरुषार्थ। भाव यह है कि जो सम्यग्दर्शन आदि निर्मल पर्यायों की रचना करे वही वीर्यगुण कहलाता है। पूज्यपादस्वामी भी यही कह रहे हैं कि स्वभाव में एकीकरण करके निर्मलपर्याय का प्रगट होना ही वीर्यगुण का कार्य है।

व्यवहार का पुरुषार्थ तो वास्तव में वीर्यगुण का पुरुषार्थ ही नहीं है। राग की मंदता होना यह भी वीर्यगुण का पुरुषार्थ नहीं है।

बहुत से लोग कहते हैं कि ये तो अपने घर की बात करते हैं। अरे भाई ! तुझे खबर नहीं है। यह हमारे घर की बात तो है; लेकिन कल्पना की बात नहीं। यह तो सर्वज्ञ परमात्मा, मुनिराज और शास्त्र की कही हुई बात है।

जो आत्मा अपने स्वभाव के साथ दृष्टि-ज्ञान-स्थिरता का जुडान करता है, उसका स्वभाव के साथ एकीकरण होता है। इस एकीकरण को ही अध्यात्मयोग कहते हैं।

उपादान जहाँ जागृत होता है, वहाँ निमित्त का लक्ष्य छूट जाता है तब यही अलौकिक निरपेक्ष मार्ग है। व्यवहार की सापेक्षता ज्ञानमात्र के लिये है, आदर करनेयोग्य नहीं। 'पर के आश्रय से मोक्षमार्ग प्रकट होना, तीन काल और तीन लोक में कदापि संभव नहीं है' यही अनंत सर्वज्ञ परमेश्वर का आदेश है। \*

वीतराग-विज्ञान ● 19

## निर्दोष अरहंतदशा कैसी ?

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की छठवीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

**छुहतण्हीरुसो रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।**

**सेदं खेद मदो रइ विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो ॥6॥**

क्षुधा, तृषा, भय, रोष, राग, मोह, चिन्ता, जरा, रोग, मृत्यु, स्वेद, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा, जन्म और उद्वेग - ये अठारह दोष अरहंत भगवान में नहीं होते।

(गतांक से आगे ....)

(8) **जरा** - तिर्यचों तथा मनुष्यों के वयकृत देहविकार (वय के कारण होनेवाली शरीर की जीर्ण अवस्था) वही जरा है। भगवान का देह भी झुर्रियों तथा वृद्धावस्थारहित होता है। साधारण जीवों को तो भगवान का देह भी पहचानना कठिन है। भगवान का शरीर भी जब ऐसा होता है तो फिर उनके आत्मा की तो बात ही क्या ? आत्मा की परमात्मदशा प्रकट होने पर निमित्तरूप से शरीर भी ऐसा होता है कि उसमें वृद्धावस्था नहीं होती। लाखों-करोड़ों वर्ष रहे तो भी उसमें झुर्रियाँ आदि नहीं पड़तीं। अन्त तक शरीर जैसा का तैसा सुन्दर बना रहता है।

(9) **रोग** - वात, पित्त और कफ की विषमता से उत्पन्न होनेवाली शरीर सम्बन्धी पीड़ा का होना रोग है। भगवान के तो जन्म से ही मल-मूत्र नहीं होता। तीनकाल में भगवान ऐसे ही होते हैं। इससमय भी सीमंधर परमात्मा ऐसी दशा में महाविदेह क्षेत्र में विराजमान हैं। उनके दिव्यध्वनि खिरती है; परन्तु इच्छा नहीं है।

इन्द्र के रोग नहीं होता और वह इन्द्र जिसकी पूजा करे ऐसे भगवान परमात्मा को रोग हो, यह बात संभव ही नहीं है। भगवान को रोग हो और वे औषध सेवन करें, यह तो तुच्छतम बात है - ऐसा भगवान का स्वरूप नहीं। जहाँ आत्मा की पूर्ण पवित्रता हो गई, वहाँ उसके साथ पुण्य का निमित्त भी ऐसा ही होता है कि

20 ● अक्टूबर, 2004

रोगादि नहीं होते।

(10) **मृत्यु** - सादि-सनिधन, मूर्त इन्द्रियोंवाला, विजातीय नरनारकादि विभाव व्यंजनपर्याय का विनाश होना ही मृत्यु है।

आत्मा अनादि-अनन्त है, जबकि यह शरीर तो आदि-अन्त वाला है। आत्मा अमूर्त-अतीन्द्रिय है, देह तो मूर्त-इन्द्रियवाला है। आत्मा चैतन्यस्वभावी है, यह शरीर उससे विजातीय है। ऐसी विभावव्यंजनपर्याय का जो विनाश है उसे मरण कहते हैं। एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है, वहाँ देह का विनाश होता है, उसे मृत्यु कहते हैं; परन्तु भगवान तो देह छूटने पर मुक्त सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं, इसलिये उसे मृत्यु नहीं कहते। लोगों की देह छूटे उसे मृत्यु कहते हैं और सर्वज्ञ परमात्मा की देह छूटे उसे मुक्ति कहते हैं। भगवान के मृत्यु नहीं होती।

ऐसे दोष रहित भगवान की श्रद्धा तो व्यवहार सम्यक्त्व है और सर्वज्ञकथित अपने चैतन्यस्वभाव की श्रद्धा परमार्थ सम्यक्त्व है।

अरहन्त भगवान के 18 दोष नहीं होते। उन अरहन्त का द्रव्य, उनके गुण और उनकी प्रकट सर्वज्ञ परमात्मदशा को जो पहिचान ले; वही आत्मा के स्वरूप को पहिचान सकता है। अरहन्त का जैसा द्रव्य तथा गुण-पर्याय है, वैसा ही आत्मा का परमार्थस्वरूप है। अन्य जिन रागादिभावों का उनमें अभाव है, वे आत्मा का स्वरूप नहीं हैं। इसप्रकार अरहन्त जैसे अपने आत्मा की पहिचान होने पर सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है। अरहन्त भगवान के मृत्यु नहीं है; क्योंकि देह-वियोग के पश्चात् वे दूसरा अवतार धारण नहीं करते। अर्थात् देह-वियोग होने पर तो उन्हें मुक्ति प्राप्त हो जाती है, उसे मृत्यु नहीं कहते।

(11) **अशुभकर्म-विपाकजनित शारीरिक श्रम से उत्पन्न जो दुर्गन्ध के सम्बन्ध के कारण दुर्वासित जल बिन्दुओं का समूह है, उसे स्वेद कहते हैं।** भगवान के चार घातिया कर्म तो नाश हो गए हैं, अनन्तवीर्य प्रकट हो गया है अर्थात् थकावट नहीं है। उनके इस प्रकार के अशुभकर्मों का संयोग ही नहीं है, जिससे पसीना निकले।

(12) **अनिष्ट की प्राप्ति अर्थात् कोई वस्तु अनिष्ट लगे - वह खेद है।** ज्ञानी के किसी पदार्थ में इष्टानिष्टपने की बुद्धि नहीं है और भगवान के तो किसी भी पदार्थ के प्रति राग-द्वेष नहीं है। उनके तो अस्थिरताजनित खेद भी नहीं है।

अरहन्त भगवान कैसे हैं - यह पहिचाने बिना **णमो अरहंताणं** ऐसा कहे अथवा **णमो वस्त्राणं** ऐसा कहे तो इन दोनों में अन्तर ही क्या है ? अरहन्त देव ही मेरे भगवान हैं, दूसरा कोई नहीं - इसका कारण क्या ? लक्षण द्वारा पहिचाने बिना अरहन्त का नाम ले अथवा किसी कुदेव का नाम ले तो इससे क्या ? स्वयं को कुछ पहिचान नहीं होने के कारण इससे कोई लाभ होनेवाला नहीं है।

अरहन्तदशा कैसी होती है ? वहाँ शरीर कैसा होता है ? उसकी पहिचान हुये बिना, भगवान को नमस्कार किया हूँ ऐसा नहीं कह सकते। जिनको नमस्कार करना है, उनको पहिचाने बिना सच्चा नमस्कार कैसे होगा ? इसलिये सर्वप्रथम अरहन्त भगवान की पहिचान करना चाहिये।

(13) **मद ह्य सर्व जन-मानस के कर्ण में अमृत उंडेलनेवाले सहज चतुर कवित्व के कारण, सहज (सुन्दर) शरीर के कारण, सहज (उत्तम) कुल के कारण, सहज बल के कारण तथा सहज ऐश्वर्य के कारण आत्मा में जो अहंकार की उत्पत्ति है - वह मद है।**

उत्तम कवित्वपना हो उससे अज्ञानी को अहंकार होता है, भगवान के ऐसा मद नहीं होता। भगवान का रूप सहज सुन्दर होता है; इन्द्र सहस्र नेत्र करके देखता है; तथापि उसे तृप्ति नहीं होती - ऐसा सुन्दररूप होता है; किन्तु भगवान के उसका मद नहीं होता। शरीर का रूप तो जड़ की आकृति है; चौदह ब्रह्माण्ड में जो सुन्दर रजकण थे, वे सब भगवान के शरीररूप परिणमित हो गये हैं, फिर भी उन्हें अभिमान नहीं है। उत्तम कुल हो, परन्तु ज्ञानी को उसका अभिमान नहीं होता - फिर वीतराग भगवान को तो अभिमान होता ही नहीं है। भगवान का अवतार महाउत्तम ऐसे क्षत्रियकुल में ही होता है, ऐसे उत्तम कुल का भी भगवान को मद नहीं होता।

भगवान का शरीर-बल अतुल होता है, सहजरूप से होता है तथा सहज ऐश्वर्य भी होता है और समवशरणादि विभूति होती है; किन्तु उन्हें उनका मद नहीं। मद तो विकार है, दोष है; वह आत्मा का स्वरूप नहीं।

(14) मनोज्ञ वस्तुओं में परमप्रीति ही **रति** है। यह भगवान के नहीं होती।

(15) परम समरसीभाव की भावना रहित जीवों के कभी पहले नहीं देखे होने

के कारण होनेवालाभाव **विस्मय** है।

भगवान के विस्मय नहीं है, वह तो आत्मा के परम आनन्द रस में लीन हैं तथा तीनकाल, तीनलोक उनके ज्ञान में ज्ञात हो गये हैं; अतः उन्हें विस्मय नहीं होता, उनके कौतूहल का भाव ही टल गया है। जिसे चैतन्य के परम समरसीभाव की भावना नहीं, उसे बाहर में कहीं नवीन पदार्थ देखने पर विस्मय होता है; परन्तु भगवान को जगत में कोई पदार्थ ही अदृष्ट नहीं है; अतः उनके विस्मय नहीं होता।

(16) केवल शुभकर्म से देवपर्याय, केवल अशुभकर्म से नारकपर्याय, माया से तिर्यच पर्याय और शुभाशुभ मिश्रकर्म से मनुष्य पर्याय में उत्पत्ति ही **जन्म** है।

प्रतिदिन अरबों रुपयों का दान करे, अहिंसा पाले, ब्रह्मचर्य पाले, ऐसे अनेक प्रकार के शुभभाव करे तो उसका फल देवपर्याय में जन्म होगा; परन्तु जिससे जन्म का नाश हो ऐसा धर्म नहीं होगा। भगवान देवलोक में जन्म धारण नहीं करते; क्योंकि उनके वैसे शुभभाव नहीं हैं।

तीव्र हिंसा, चोरी इत्यादि महाअधर्मरूप पापभाव का सेवन करे, आखेट करे, मांसभक्षण करे तथा परदारा सेवन करे; ऐसे परिणामवाला जीव नरक में जन्म लेता है। जो तीव्र-कपट-कुटिल माया के परिणामों का सेवन करे वह तिर्यच में जन्म लेता है। शुभ तथा अशुभ ऐसे मिश्रपरिणाम से जीव का मनुष्य पर्याय में अवतार होता है। इन चार प्रकार की गतियों में जन्म लेना तो संसार है ह्य जन्म है; ऐसी चारों गतियों में भगवान का जन्म नहीं होता, भगवान सिद्ध गति को प्राप्त हुये हैं।

(17) दर्शनावरणी कर्म के उदय से ज्ञानज्योति का अस्त होना ही **निद्रा** है। निद्रा के समय विचार शून्यता हो जाती है, ज्ञान जागृति रुक जाती है। भगवान के तो केवलज्ञान ज्योति प्रकट हो गई है, इसलिये उनके निद्रा नहीं होती।

(18) इष्ट के वियोग में आकुलता-घबराहट होना **उद्वेग** है। भगवान के घबराहट नहीं होती। ज्ञानी को भी भान है कि मेरी आत्मा को कोई वस्तु प्रिय या अप्रिय नहीं है। ऐसे भानसहित चैतन्य में स्थिर होकर जहाँ पूर्ण वीतरागता प्रगट हो गई है- ऐसी अरहंतदशा में उद्वेग नहीं हो सकता।

उक्त अठारह दोष भगवान सर्वज्ञ के नहीं होते। क्षुधा, तृषा, आदि सभी दोषों से तीनों लोक व्याप्त हैं; किन्तु भगवान तो इन सर्व दोषों से सर्वथा रहित हैं। (क्रमशः)

## शक्तियों का संग्रहालय : भगवान आत्मा

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम समयसार नामक ग्रन्थाधिराज पर परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने 'आत्मख्याति' नामक संस्कृत टीका लिखी है। उसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अनेकान्त का विस्तृत वर्णन करते हुये आत्मा की 47 शक्तियों का वर्णन किया है, साथ ही अनेक कलश भी लिखे हैं। उन पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी ने समय-समय पर अतिमहत्त्वपूर्ण प्रवचन किये हैं, जो पाठकों के लाभार्थ क्रमशः प्रस्तुत हैं।

(गतांक से आगे .....)

ज्ञानमात्रा भाव स्वयं ही ज्ञान है, स्वयं ही अपना ज्ञेय है और स्वयं ही अपना ज्ञाता है - इस अर्थ को अब 271 वें काव्य में कहते हैं -

( मालिनी )

योऽयंभावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव ।  
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गान् ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृमद्धस्तुमात्रः ॥

( रोला )

परज्ञेयों के ज्ञानमात्र मैं नहीं जिनेश्वर,  
मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूँ निश्चित जानो ।  
ज्ञेयों के आकार ज्ञान की कल्लालों से,  
परिणत ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेयमय वस्तुमात्र हूँ ॥

जो यह ज्ञानमात्रा भाव मैं हूँ उसे ज्ञेयों का ज्ञान करनेवाला मात्रा ही नहीं जानना चाहिए; अपितु उसे ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान की कल्लालों के रूप में परिणमित होता हुआ ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्रा जानना चाहिए। अर्थात् स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञेय, स्वयं ही ज्ञाता - इसप्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्रा जानना चाहिए।

ज्ञानमात्र भाव ज्ञातृक्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है। बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न हैं, वे ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते; ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर ज्ञान ज्ञेयाकार रूप दिखाई देता है; परन्तु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं। वे ज्ञानतरंगों ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। इसप्रकार स्वयं

ही स्वतः जानने योग्य होने से वे ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप हैं और स्वयं ही अपना जानने-वाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। इसप्रकार ज्ञानमात्र भाव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता - इन तीनों भावों से युक्त सामान्यविशेष स्वरूप वस्तु है। 'ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ' इसप्रकार अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभव करता है।

'मैं ज्ञानमात्र भाव हूँ' - ऐसा जो कहा है, उसका अर्थ मात्र छह द्रव्यों का जाननेवाला ज्ञानमात्र नहीं समझना; बल्कि ज्ञान, ज्ञेय अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना। स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता - ऐसा ज्ञान-ज्ञाता एवं ज्ञेयरूप तीनों भावों सहित वस्तुमात्र जानना।

'ज्ञेय के आकाररूप होते हुये ज्ञान की कल्लोलरूप से परिणमित - ऐसा जो टीका में कहा, वह व्यवहार से कहा है। वस्तुतः तो छहद्रव्यरूप ज्ञेयों का जैसा स्वरूप है, उनको जानने में विशेषरूप से परिणमना ज्ञान की स्वयं की दशा है और वह ज्ञान की स्वयं की सामर्थ्य से है। 'ज्ञेय के आकार से हुआ ज्ञान - यह तो कथनमात्रा है; वस्तुतः ज्ञान तो ज्ञानाकार ही है, ज्ञेयाकार होता ही नहीं।

अहा ! यहाँ यह कहते हैं कि यह ज्ञान की पर्याय और मेरा द्रव्य-गुण (द्रव्य-गुण-पर्याय) इन तीनों रूप होता हुआ मैं व्यवहार से ज्ञेय हूँ, ज्ञान हूँ; किन्तु परमार्थ से ऐसा नहीं है। परमार्थ से तो मैं एक ही हूँ। जगत में अन्य वस्तुयें हों तो भले हों, परमार्थ से उनके साथ मेरा जानने तक का संबंध नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि - परज्ञेय अर्थात् परपदार्थरूप देव-शास्त्रा-गुरु, पंचपरमेष्ठी और व्यवहार रत्नत्राय आदि ज्ञेय के साथ मेरा ज्ञाता-ज्ञेय संबंध तो दूर ही रहो; मैं तो परमार्थ से ज्ञेय-ज्ञान व ज्ञाता - ऐसे तीन भेदरूप भी नहीं हूँ। इन तीनों मय मैं एक ही हूँ। देखो, यह स्वानुभव की दशा ! मैं ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय - ऐसे भेदों से भेदरूप नहीं होता। मैं ऐसा अभेद चिन्मात्रा आत्मा हूँ। आत्मा में ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञाता के भेदों का उत्पन्न होना तो राग है, विकल्प है, वस्तु में ऐसे भेद नहीं हैं, वस्तु तो अभेद है, एक है।

भाई ! तुझमें तेरा अस्तित्व कितना विशाल है - इसकी तुझे स्वयं ही खबर नहीं है। देख ! तीन लोक के अनन्त द्रव्य, उनकी त्रिकाकालवर्ती पर्यायें जो अनन्तानन्त हैं, उन सबको जाननेवाली तेरी ज्ञान की दशा - वे सब वस्तुतः तेरे ज्ञेय हैं। न केवल वे ही तेरे ज्ञेय हैं; किन्तु ऐसी सामर्थ्य की धारक तेरी स्वयं की द्रव्य-गुण-पर्यायमय आत्मवस्तु भी तेरी ज्ञेय है।

उन समस्त को जाननहार तेरा अपना ज्ञान, वे समस्त तेरे अपने ज्ञेय और

स्वयं ही उन समस्त का ज्ञाता - ये तीनों वस्तुएँ भी एक की एक हैं, तीन भेदरूप नहीं। ज्ञाता, ज्ञान व ज्ञेय - इन तीनों भावों सहित वस्तुमात्र स्वयं एक है।

बहुत सरस भावार्थ है, वस्तु के मर्म का मक्खन है। कहते हैं कि - अपने द्रव्य पर दृष्टि डालने पर स्वयं ही ज्ञाता, स्वयं ही ज्ञान और स्वयं ही ज्ञेय है - ऐसा अनुभव होता है। छह द्रव्य ज्ञेय, मैं ज्ञान और मैं ज्ञाता - ऐसा अनुभव ज्ञानी नहीं करता; क्योंकि परमार्थ से पर के साथ ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध नहीं है।

आगे कहते हैं कि 'ज्ञानमात्र भाव जाननक्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है। जगत के ज्ञेयों को जाननेरूप जाननक्रिया ज्ञानस्वरूप है, ज्ञेयरूप नहीं। ज्ञान की पर्याय में जो छह द्रव्य जानने में आते हैं, निश्चय से ज्ञान की पर्याय में वे छह द्रव्य जानने में नहीं आते; बल्कि छह द्रव्य सम्बन्धी अपना ज्ञान ही जानने में आता है और वह ज्ञान ही निश्चय से आत्मा का ज्ञेय है। परज्ञेयों को जाना जाता है अथवा परज्ञेय ज्ञान में ज्ञात होते हैं - यह कहना तो व्यवहार है। ज्ञेयसंबन्धी अपनी जो ज्ञान पर्याय जानने रूप हुई है, वही ज्ञान का ज्ञेय है, परज्ञेय नहीं। छह द्रव्य का ज्ञान कहना व्यवहार है। ज्ञेय का ज्ञान निश्चय से ज्ञेय का नहीं; किन्तु ज्ञान का ही ज्ञान है।

पण्डित जयचन्द्रजी छाबड़ा भी अपने भावार्थ में यही स्पष्ट करते हैं। देखो, वे कहते हैं - बाह्य ज्ञेय - रागादि से लेकर छहों द्रव्य अपने आत्मा से जुड़े हैं। यदि वे जुड़े न हों तो एक हो जायें; किन्तु ऐसा तो होता ही नहीं है।

राग का ज्ञान होता है, उसमें राग ज्ञान की पर्याय में आता नहीं है। केवली भगवान को लोकालोक का ज्ञान हुआ तो लोकालोक उनके केवलज्ञान में प्रविष्ट नहीं हो जाता। घट को जाननेवाला घटरूप नहीं हो जाता तथा घट को जाननेवाला निश्चय से घट को जानता ही नहीं है। स्व-पर को जाननेवाले ज्ञानरूप यह आत्मा स्वयं ही होता है।

घट को जाननेवाले ज्ञानरूप यह आत्मा स्वयं ही होता है; इसकारण घट का ज्ञान नहीं; परन्तु आत्मा का ही ज्ञान होता है। अपने में ज्ञानपरिणाम का ही अस्तित्व है, ज्ञेयों का नहीं।

आत्मा का 'ज्ञ' स्वभाव है और वह स्वयं से हुई अपनी स्वयं की क्रिया है, इसमें परज्ञेयों का कुछ भी नहीं है। इसप्रकार ज्ञेयसम्बन्धी अपने ज्ञान का जो परिणाम हुआ, वह स्वयं ही ज्ञेय स्वयं ही ज्ञान और स्वयं ही ज्ञाता है। ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में आने पर - ज्ञान ज्ञेयाकार दिखाई देता है, परन्तु वह ज्ञान की कल्लोल है।

## ज्ञान गौरी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

**प्रश्न :** धर्म का निमित्त किसको होता है ?

**उत्तर :** अज्ञानी जीव में तो धर्मभाव प्रकट ही नहीं हुआ है; इसलिए उसको तो धर्म का निमित्त कोई है ही नहीं; क्योंकि कार्य हुए बिना निमित्त किसका ? अज्ञानी के धर्मरूप कार्य अपने में हुआ नहीं है; अतः धर्म के निमित्त का भी उसको निषेध वर्तता है। ज्ञानी ने अन्तरस्वभाव के भान से अपने भाव में धर्म प्रकट किया है, इसलिए उसको ही धर्म के निमित्त होते हैं; परन्तु उसकी दृष्टि में निमित्तों का निषेध वर्तता है और स्वभाव का आदर वर्तता है।

इसप्रकार निमित्त के कारण धर्म होता है - ऐसा जो मानता है, उसके तो धर्म के निमित्त ही नहीं होते। और जिसको धर्म के निमित्त होते हैं, ऐसा ज्ञानी निमित्त के कारण धर्म होता है, ऐसा मानता नहीं है।

**प्रश्न :** क्या यह सोनगढ़ में निर्मित परमागम मंदिर आदि किसी जीव के किये बिना स्वयं ही बन गए हैं ?

**उत्तर :** पुद्गल ही अपने स्वकाल में परिणामन करके परमागम मंदिर आदि रूप से हुए हैं, जीव ने उन्हें कुछ भी किया नहीं है। जीव ने तो अपने में शुभभाव किया था; परन्तु उससे हुआ नहीं है। परमाणु ही स्वतन्त्ररूपेण कर्ता होकर परमागम मन्दिर आदि कार्यरूप हुए हैं।

**प्रश्न :** क्या केवलज्ञानावरणी कर्म में इतनी शक्ति है कि केवलज्ञान को न होने दे ? अथवा केवलज्ञान को रोके रखे ?

**उत्तर :** कर्म तो आत्मा से भिन्न वस्तु है। केवलज्ञानावरणी कर्म केवलज्ञान को रोकता नहीं है। वहाँ तो कर्म परमाणु के परिणामन की उत्कृष्ट शक्ति कितनी है, वह बताने के लिए - केवलज्ञानावरणी कर्म से केवलज्ञान उत्पन्न नहीं हो पाता - ऐसा निमित्त से कथन किया है; परन्तु केवलज्ञान कहीं उस कर्म के कारण रोका नहीं जाता है। जब जीव अपनी शक्ति की हीनपरिणामरूप योग्यता से परिणामन करता है, तब कर्म को निमित्त कहा जाता है।

**प्रश्न :** अज्ञानी को तो निमित्त वास्तव में ज्ञेय भी नहीं है - ऐसा आप कहते हैं

ह वह कैसे ?

**उत्तर :** ज्ञान बिना ज्ञेय किसका ? जैसे लोकालोक तो सदा से है; किन्तु जब केवलज्ञान प्रकट हुआ तब लोकालोक ज्ञेय हुआ। केवलज्ञान होने से पहले लोकालोक ज्ञेय नहीं था; परन्तु स्वाश्रय से केवलज्ञान प्रकट होने पर लोकालोक ज्ञेय हुआ। उसीप्रकार निचलीदशा में भी यद्यपि रागादि और निमित्त वास्तव में ज्ञेय ही हैं, किन्तु सचमुच में उन्हें ज्ञान का ज्ञेय तब कहा जाये, जब कि 'मैं उन राग और निमित्तों से भिन्न हूँ' - इसप्रकार स्वसन्मुख होकर आत्मा का ज्ञान प्रकट करे तथा राग और निमित्त को परज्ञेयरूप से यथार्थ जाने।

रागादि और निमित्त, ज्ञान के कर्ता तो नहीं है; परन्तु वास्तव में अज्ञानी को वे ज्ञान के ज्ञेय भी नहीं है; क्योंकि वहाँ स्वाश्रितज्ञान विकसित ही नहीं हुआ; अतः वह ज्ञान, राग में ही एकाकार रहने से, उसमें राग को ज्ञेय करने की शक्ति प्रकट नहीं हुई। राग से भिन्न पड़े बिना राग को ज्ञेय करने की शक्ति ज्ञान में प्रकट नहीं होती। राग और निमित्त से भिन्न आत्मस्वभाव को जाने बिना राग को रागरूप और निमित्त को निमित्तरूप जानेगा कौन ? जाननेवाला ज्ञान तो राग और निमित्त की रुचि में अटका पड़ा है। राग और निमित्त की रुचि टले बिना और आत्मा की तरफ की रुचि किये बिना निमित्त और व्यवहार का सच्चा ज्ञान नहीं होता। जब स्वाश्रय से ज्ञानस्वभाव की प्रतीति करके ज्ञानस्वभाव को ही स्वज्ञेय किया, तब स्वपर-प्रकाशक ज्ञान सामर्थ्य विकसित हुई और निमित्तादि भी उसके व्यवहार से ज्ञेय हुये।

**प्रश्न :** अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय को प्रथम जानने के लिये कहा है न ?

**उत्तर :** उन अरहंत के द्रव्य-गुण-पर्याय का लक्ष छोड़कर स्वयं को पहिचाने तो भेदज्ञान हो और तभी उन अरहंत को निमित्त कहा जाये।

**प्रश्न :** समयसार की प्रथम गाथा में कहा कि अनंत सिद्धों को तेरी पर्याय में स्थापन करता हूँ। यहाँ प्रश्न है कि अनंत सिद्ध तो हमारे लिये परद्रव्य हैं, हमारी पर्याय में अतद्भावरूप है वह ऐसी स्थिति में उनका स्थापन कैसे हो सकता है ?

**उत्तर :** अनंत सिद्ध हमारी पर्याय में भले ही अतद्भावरूप हो; परन्तु उन अनंत सिद्धों की प्रतीति पर्याय में आ जाती है, इसलिये अनंत सिद्धों का स्थापन करना कहा है। जिसतरह अद्यवसान का त्याग कराने के लिये बाह्य वस्तु का त्याग कराया जाता है; उसीतरह अपने सिद्धस्वभाव का पर्याय में स्थापन कराने के लिये अनन्त सिद्धों का स्थापन कराने में आया है। जैसे बाह्यवस्तु अध्यवसान का निमित्त है, वैसे ही अपने सिद्धस्वरूप का लक्ष कराने में अनन्त सिद्ध निमित्त हैं।

28 ● अक्टूबर, 2004

**प्रश्न :** समयसार की ग्यारहवीं गाथा को आप जैनदर्शन का प्राण कहते हो, उसमें तो व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा है - झूठा कहा है। कृपया इस गाथा का स्पष्टीकरण कीजिए ?

**उत्तर :** ग्यारहवीं गाथा वास्तव में जैनदर्शन के प्राणरूप ही है। उसमें निश्चय व्यवहारनय की बात की है, उसे यथातथ्य जानना चाहिये। राग, पर्याय, गुणभेद - ये सब व्यवहारनय के विषय हैं और त्रिकाली वस्तु में नहीं है; इसलिये ही व्यवहार नय को झूठा कहकर अभूतार्थ कहा है; अर्थात् पर्याय है ही नहीं वह इसप्रकार इसका सीधा-साधा अर्थ होता है, परन्तु उसका आशय ऐसा नहीं है। पर्याय है अवश्य, उसके अस्तित्व का अस्वीकार नहीं किया जा सकता; परन्तु जो त्रिकाली वस्तु है, वह पर्याय नहीं है। इसलिये पर्याय की उपेक्षा करके उसे गौण करके त्रिकाली ध्रुव ज्ञायक की दृष्टि कराई जाती है; क्योंकि त्रिकाली द्रव्य को मुख्य करके द्रव्य का अनुभव कराने का प्रयोजन है। ज्ञान वह आत्मा ऐसा भेद भी दृष्टि के विषय में नहीं आता। अभेददृष्टि की दृष्टि में भेद दिखाई ही नहीं देता, सत्यार्थदृष्टि को असत्यार्थ दिखाई ही नहीं पड़ता, नित्य देखनेवाले को अनित्य दृष्टिगोचर नहीं होता, भूतार्थ पर दृष्टि रखनेवाले को अभूतार्थ के दर्शन नहीं होते तथा एकाकार देखनेवाले को अनेकाकार दृष्टि में नहीं आता; इसीकारण से भेदरूप व्यवहार को अभूतार्थ कहा है और निश्चय नय की विषयभूत त्रिकालीध्रुव वस्तु ही भूतार्थ होने से उसका आश्रय कराया है।

अहो! यह आत्मतत्त्व तो गहन है, उसका निर्णय और अनुभव करने के लिये आचार्यों के अन्तरंग अभिप्राय को पकड़ना होगा।

आर्किचन्य और ब्रह्मचर्य एक सिक्के के दो पहलू है। ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा को ही निज मानना, जानना और उसी में जम जाना, रम जाना, समा जाना, लीन हो जाना ब्रह्मचर्य है और उससे भिन्न परपदार्थों एवं उनके लक्ष्य से उत्पन्न होने वाले चिद्विकारों को अपना नहीं मानना, नहीं जानना और उनमें लीन नहीं होना ही आर्किचन्य है।

यदि स्वलीनता ब्रह्मचर्य है तो पर में एकत्वबुद्धि और लीनता का अभाव आर्किचन्य है। अतः जिसे अस्ति से ब्रह्मचर्य धर्म कहा जाता है, उसे ही नास्ति से आर्किचन्यधर्म कहा गया है। इसप्रकार स्व-अस्ति ब्रह्मचर्य और पर की नास्ति आर्किचन्य।

ह धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ : १३५



## बच्चों की प्रथम पाठशाला माँ

बालकों को सदाचार के संस्कार, तात्त्विकज्ञान और धार्मिक वातावरण घर में माँ द्वारा ही आधुनिक तरीके से दिये जा सकते हैं; क्योंकि माँ ही बच्चों की प्रथम पाठशाला है। बालकों को कैसे संस्कारित किया जा सकता है - इस दृष्टिकोण से डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया द्वारा जैन नर्सरी, के.जी. भाग-1, के.जी. भाग-2 तथा के.जी. भाग-3 नामक पुस्तकें लिखी गई हैं।

अपनी इच्छा के प्रतिकूल काम होने पर ना की प्रतिक्रिया गर्दन हिलाकर देना बच्चों को सिखाना नहीं पड़ता तथा सर्वप्रथम बच्चे को हम माँ बोलना सिखाते हैं, उसे माँ के साथ हाँ बोलना भी सिखायें और नर्सरी पढ़ायें। इसप्रकार हाँ और ना के माध्यम से 2-3 वर्ष के शिशु को संस्कारित कर धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण किया जा सकता है।

4 से 6 वर्ष के बच्चों के दृष्टिकोण से लिखी गई के.जी.1, के.जी.2 व के.जी.3 बच्चों में काफी लोकप्रिय हुई है। इनका द्वितीय संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। जो महानुभाव इन पुस्तकों में अपना सहयोग देना चाहें, वे अपना चैक या ड्राफ्ट 'आराध्य प्रकाशन' के नाम से निम्न पते पर भेजें - आराध्य प्रकाशन, 4-1704, गुरुकुल टॉवर, जी.एस. रोड, दहीसर (प.) मुम्बई - 4000

## अब साधना चैनल पर डॉ. भारिल्ल

सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्ता तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के मार्मिक प्रवचन प्रतिदिन सोमवार से शनिवार रात्रि 10.00 बजे तथा रविवार को दोपहर 2.30 बजे नियमितरूप से साधना चैनल पर प्रसारित किये जा रहे हैं। इसप्रकार मीडिया के बाद अब सैटेलाइट जगत में भी डॉ. भारिल्ल के प्रवचनों की धूम मची हुई है।

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के अहिंसा, शाकाहार, श्रावकधर्म-बारहव्रत, ग्यारह प्रतिमायें, षट्आवश्यक, वैराग्यवर्धक बारह भावनार्यें, अनेकांतवाद, वस्तुव्यवस्था, आत्मा-परमात्मा जैसे गंभीर विषयों पर अत्यन्त सरल एवं सरस मार्मिक प्रवचनों का लाभ जन सामान्य को प्राप्त हो रहा है; आप भी इसका लाभ प्राप्त करें।

ये प्रवचन दिनांक 10 सितम्बर, 2004 से प्रसारित हो रहे हैं।

यदि आपके गांव/शहर में साधना चैनल न आता हो तो अपने केबल ऑपरेटर से कहकर प्रारंभ करावें। कोई कठिनाई होने पर श्री पंकज जैन (साधना चैनल) से 011-32106419 नम्बर पर सम्पर्क करें।

## वैराग्य समाचार

1. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक पण्डित सौरभकुमारजी शास्त्री फिरोजाबाद की दादीजी श्रीमती जैनकुमारी जैन धर्मपत्नी श्री राजकुमारजी जैन का दिनांक 10 अगस्त, 2004 को शान्त परिणामों से देहावसान हो गया है। आप अत्यन्त धार्मिक एवं तत्त्वाभ्यासी महिला थीं। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान को 501/- रुपये प्राप्त हुये हैं।

2. उज्जैन निवासी स्व. श्री फूलचन्दजी झांझरी के सुपुत्र ज्ञानभानुजी झांझरी का दिनांक 17 अगस्त, 2004 को प्रातः दुर्घटनाग्रस्त होने से इन्दौर अस्पताल में दिनांक 20 अगस्त, 2004 को समताभावपूर्वक देहावसान हो गया है।

आप पण्डित विमलप्रकाशजी झांझरी के छोटे भाई तथा पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी के बड़े भाई थे। अपका सम्पूर्ण जीवन सामाजिक संगठनों एवं संस्थाओं के लिये समर्पित था। आपके चिरवियोग से जैनसमाज ने एक कुशल कार्यकर्ता खो दिया है; जिसकी पूर्ति होना संभव नहीं है। आपके निधन पर पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर, श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय जयपुर, जैनपथप्रदर्शक समिति एवं वीतराग-विज्ञान परिवार हार्दिक शोक संवेदना प्रकट करते हैं।

दिवंगत आत्मार्यें शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हों - यही मंगल कामना है।

## पुस्तक विमोचन सम्पन्न

जयपुर : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर के अवसर पर डॉ. शुद्धात्मप्रभा टडैया, मुम्बई द्वारा लिखित 'प्रमाण-ज्ञान' तथा 'चलो पाठशाला चलो सिनेमा' नामक दो पुस्तकों का विमोचन दिनांक 11 अगस्त, 2004 को श्री दिग. जैन महासमिति के अध्यक्ष श्री अशोककुमारजी बड़जात्या, इन्दौर के करकमलों से सम्पन्न हुआ।

## डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

18 से 27 सितम्बर	कोल्हापुर (महा.)	दिगम्बर पर्यूषण
28 सितम्बर	सांगली (महा.) - प्रातः 9 बजे	प्रवचन
28 सितम्बर	उगार-बद्रुक (कर्ना.) रात्रि 8 बजे	प्रवचन
29 सितम्बर	बेलगाम (कर्नाटक)	प्रवचन
2 अक्टूबर	नागेश्वर तीर्थ (गुज.)	जैन सोशल ग्रुप
17 से 26 अक्टूबर	जयपुर (राज.)	शिक्षण-शिविर
26 नव. से 2 दिसम्बर	शिकोहाबाद (उ.प्र.)	पंचकल्याणक
27 से 31 दिसम्बर	देवलाली (महा.)	विधान एवं शिविर

पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर द्वारा आयोजित  
ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में  
**सातवाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर**

(रविवार, 17 अक्टूबर से मंगलवार, 26 अक्टूबर, 2004 तक)

आपको सूचित करते हुये हर्ष हो रहा है कि श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर में रविवार, दिनांक 17 अक्टूबर, 2004 से मंगलवार, दिनांक 26 अक्टूबर, 2004 तक आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर एवं विधान का आयोजन अनेक विशिष्ट मांगलिक कार्यक्रमों सहित किया जा रहा है।

शिविर में अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, ब्र.यशपालजी जैन बेलगाम, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित शैलेशभाई तलोद, डॉ. नरेन्द्रकुमारजी जैन गंगानगर, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील जयपुर, पण्डित अनिलकुमारजी शास्त्री भिण्ड, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा जयपुर आदि अनेक विशिष्ट विद्वानों का प्रवचन, कक्षाओं एवं तत्त्वचर्चा के माध्यम से धर्मलाभ मिलेगा। साथ ही व्याख्यानमाला के माध्यम से अन्य अनेक विद्वानों द्वारा विविध विषयों के व्याख्यानो का लाभ भी प्राप्त होगा।

सम्पूर्ण कार्यक्रम ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद एवं पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर के कुशल निर्देशन में सम्पन्न होंगे।

सभी साधर्मि बन्धुओं को ऐसे मांगलिक अवसर पर सपरिवार एवं इष्ट मित्रों सहित पधारकर धर्मलाभ लेने हेतु हमारा वात्सल्यपूर्ण हार्दिक आमंत्रण है।

**निवेदक**

**पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर**